☆ गांधी जी और हिन्दी

दया प्रकाश सिन्हा
आई. ए. एस. (सेवानिवृत्त)

गांधी जी जनवरी 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आए। दक्षिण अफ्रीका में भारत के अनेक क्षेत्रों से लोग अपनी रोजी–रोटी के लिए पहुंचे हुए थे। उनमें तमिल और तेलगू बोलने वाले थे। मराठी और गुजराती बोलने वाले थे। मलयालम बोलने वाले थे। हिन्दी भाषी अल्पसंख्या में थे। किन्तु सब आपस में एक दूसरे से हिन्दी में ही बात करते थे। यह गांधी जी ने देखा और समझा था। वे स्वयं भी हिन्दी जानते थे, किन्तु उन्होंने हिन्दी के महत्व को जाना था। उन्होंने पहचाना कि अगर भारत में विभिन्न भाषा भाषियों के बीच कोई संपर्क भाषा हो सकती है, तो वह केवल हिन्दी थी। हिन्दी को उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारा। इसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दी से अलग सब भारतीय भाषाएँ अराष्ट्रीय हैं। राष्ट्रभाषा से तात्पर्य मात्र यह है कि वह भाषा जो अखिल भारतीय स्तर पर संपूर्ण राष्ट्र को स्वीकार हो। इस सन्दर्भ में वे भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए कृतसंकल्प थे।

हिन्दी के सबल पक्षधर :

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सम्मुख 5 फरवरी, 1916 को बोलते हुए गांधीजी ने कहा– *''मैं शर्मिन्दा हूँ कि मैं आपके सामने अच्छी हिन्दी में नहीं बोल पाऊँगा। आप तो जानते हैं कि मैं दक्षिण अफ्रीका में रहता था। वहीं पर मैंने अपने हिन्दीभाषी भाइयों के साथ काम करते हुए हिन्दी सीखी। ...... नागरी प्रचारिणी सभा के पदाधिकारियों में जो वकील हैं जानना चाहता हूँ कि वह अपना अदालती काम अंग्रेजी में करते हैं, या हिन्दी में। अगर वह अंग्रेजी में करते हैं तो मैं उनसे कहूँगा कि वह हिन्दी में करें। उन नौजवानों से जो अभी विद्यार्थी हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे प्रतिज्ञा करें कि एक–दूसरे को केवल हिन्दी में पत्र लिखें। वह भाषा जिसमें तुलसीदास जैसे कवि ने रचना की वह निस्सन्देह पवित्र है, और कोई अन्य भाषा उसके सामने ठहर नहीं सकती। अगर हम तमिल सीखें, तो हम तमिल भाषियों को भी हिन्दी सिखा सकते हैं।'' (कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी, खण्ड 13, पृष्ठ 209–210)*

1916 में उत्तर प्रदेश का संभ्रान्त हिन्दूवर्ग भी हिन्दी नहीं जानता था। वह उर्दू–फारसी जानता था। हिन्दी केवल स्त्रियों की भाषा बनकर रह गई थी। रामचरितमानस और हनुमानचालीसा तक सीमित हो गई थी। मुगलों के जमाने में हुकूमत और अदालत की जबान फारसी थी। अंग्रेजों ने उन्नीसवीं शताब्दी में अदालत की भाषा फारसी के स्थान पर उर्दू कर दी। गांधी जी चाहते थे कि उर्दू के स्थान पर हिन्दी का अधिक से अधिक प्रचार हो। वकील तक अपना अदालती काम हिन्दी में करें। गांधी जी की दृष्टि में हिन्दी का प्रचार राष्ट्र निर्माण

का कार्य था। इसलिए वह इतने ही से संतुष्ट नहीं थे कि उत्तर प्रदेश के लोग हिन्दी पढें। वह चाहते थे कि उत्तर प्रदेश के लोग हिन्दी पढ़कर तमिलभाषियों को भी हिन्दी पढाएं। उस कालावधि में ऐसी थी गांधी जी की हिन्दी के प्रति प्रतिबद्धता।

8 फरवरी, 1916 को बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी में बोलते हुए उन्होंने चुनौती भरे स्वर में श्रोताओं से पूछा– *''क्या कोई ऐसा भी व्यक्ति है जो अंग्रेजी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का सपना देखता है?''* दर्शकों ने एक स्वर से कहा– *''नहीं नहीं''*। गांधी जी ने अपनी बात जारी रखते हुए आगे कहा – *''इस राष्ट्र पर यह अवरोध क्यों? जरा सोचिये कि अंग्रेजी बच्चों के मुकाबले में हमारे बच्चों को कैसी असमान दौड़ दौड़नी पड़ती है। मुझे पूना के प्राध्यापकों से चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने मुझे बताया कि हर हिन्दुस्तानी विद्यार्थी को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना होता है। इसमें उसके जीवन के कम से कम छह बहुमूल्य वर्ष खो जाते हैं। इसको स्कूल और कालिजों के विद्यार्थियों से गुणा करके अपने आप निकालिए कि राष्ट्र के कितने हजार साल व्यर्थ हो चुके हैं।''*

अपनी आयु के उस दौर में गांधी जी कल्पना भी नहीं कर सकते कि भविष्य में कभी कोई हिन्दुस्तानी सपने में भी अंग्रेजी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की बात सोचेगा। इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि स्वयं गांधी जी के पट्टशिष्य और उनके घोषित उत्तराधिकारी जवाहर लाल नेहरू के कारण आज अंग्रेजी राष्ट्रभाषा के स्थान पर पदासीन है।

लखनऊ में 29–31 दिसम्बर 1916 को आयोजित कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर उन्होने एक साक्षात्कार में कहा, *''जब तक हिन्दी में सब सरकारी काम–काज नहीं होता, देश की प्रगति नहीं हो सकती। जब तक कांग्रेस अपना सारा काम–काज हिन्दी में नहीं करती तब तक स्वराज संभव नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि सभी प्रांत अपनी अपनी भाषाएं छोड़कर हिन्दी में पढ़ना लिखना आरम्भ कर दें। प्रांतीय मसलों में, प्रांतीय भाषाओं का प्रयोग अवश्य होना चाहिए। किन्तु सभी राष्ट्रीय प्रश्नों पर विमर्श केवल राष्ट्रीय भाषा में होना चाहिए। यह आसानी से किया जा सकता है। यह कार्य जो आज हम अंग्रेजी में कर रहें हैं, उसे हमें हिन्दी में करना चाहिए।''*

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए गांधी जी उसके राष्ट्रव्यापी प्रसार के लिए अथक प्रयास कर रहे थे। ''आल इंडिया कॉमन स्क्रिप्ट एंड कॉमन लैंग्वेज कॉन्फ्रेन्स'' लखनऊ के सामने 29 दिसम्बर, 1916 को उन्होंने श्रोंताओं से अपील की – *''कृपया पांच–दस ऐसे लोग ढूंढिये जो मद्रास जाकर हिन्दी प्रचार करें।''*

उन्होंने आगे कहा – *''लोग कहते हैं कि हिन्दी में कुछ नहीं है। बिना अंग्रेजी के हमारा काम नहीं चल सकता। कभी–कभी तो अंग्रेजी न जानने वाले को बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ सकता है।......अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी कितनी ही पिछड़ी क्यों न हो, हमको हिन्दी का पद बढ़ाना है।'' (सी डब्ल्यू एम जी खण्ड 13, पृष्ठ 321–322)*

17 मई 1917 को गांधी जी ने हिन्दी की हिमायत में एक लेख लिखकर अनेक समाचार पत्रों में प्रकाशित होने को भेजा। 'प्रताप' में वह लेख 28 मई 1917 को प्रकाशित हुआ था। उसके निम्नलिखित अंश अवलोकनीय हैं–

''केवल हिन्दी ही भारत के शिक्षित लोगों की साझे की भाषा हो सकती है। अब केवल यह विचार करना है कि उसे कैसे संभव किया जाए। वह स्थान जिसे अंग्रेजी हड़पना चाह रही है, और जिसे वह कभी पा नहीं सकती, उसे हिन्दी को दिया जाना चाहिए, क्योंकि वही उसकी अधिकारिणी है। अभी तक भी हमने राष्ट्रीय कार्य–व्यापार हिन्दी में प्रारम्भ नहीं किया है। इसका कारण हमारी कायरता, हममें विश्वास की कमी और हिन्दी भाषा की महानता की गैर–जानकारी है। अगर हम अपनी कायरता त्याग दें, विश्वास उत्पन्न करें और हिन्दी भाषा की महानता को जानें, तो हिन्दी का प्रयोग राष्ट्रीय और प्रान्तीय सभाओं में और सरकारी दफ्तरों में प्रारंभ हो जाएगा । इस समय मुख्य कार्य राष्ट्रभाषा को देवनागरी लिपि में पूरे हिन्दुस्तान में फैलाना है।'' (सी डब्ल्यू एम जी खण्ड 13 पृष्ठ 419)

हिन्दी के पूरे देश में प्रचार करने के अपने दृढ़ निश्चय को गांधीजी ने केवल अपने भाषणों तक ही सीमित नहीं रखा, उन्होंने स्वयं इसे कार्यरूप देने में पहल भी की। उन्होंने अपने पुत्र देवदास गांधी को प्रचार और शिक्षण के लिए मद्रास भेजा। 17 अगस्त, 1918 के एक पत्र में गांधी जी ने देवदास गांधी को लिखा– *''मैंने हिन्दी शिक्षण की तुम्हारी दो महीने की रिपोर्ट पढ़ी, और मैं संतुष्ट हूँ। ईश्वर करें तुम्हारी लंबी आयु हो जिससे मद्रास प्रेसीडेन्सी में हिन्दी की एकीकरण की धुन गूंजे, उत्तर और दक्षिण के बीच की खाई एकदम मिट जाए और इन दोनों भागों के लोग एक हो जाएं।'' (सी डब्ल्यू एम जी, खण्ड 15 पृष्ठ 28)*

हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद की गतिविधियों से भी गांधी जी क्रियाशील रूप से संबद्ध थे। सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन (मार्च 1918) में एक सात सदस्यीय कमेटी गठित की गई, जिसका दायित्व छह ऐसे तमिल और तेलगू नौजवानों को खोजकर हिन्दी शिक्षा देना था, जो अन्ततः हिन्दी का प्रसार तमिल तथा तेलगू भाषी क्षेत्रों में करें। गांधी जी भी इस कमेटी के एक सदस्य नियुक्त किए गए थे। इस अधिवेशन के समापन अवसर पर गांधी जी ने अधिवेशन के निर्णयों के बारे में प्रेस के नाम पर पत्र जारी किया। इसमें उन्होंने लिखा ..... *''कमेटी का तमिल और तेलगू जिलों में हिन्दी के निशुल्क प्रशिक्षण के लिए हिन्दी शिक्षक भेजने का प्रस्ताव है।..... जो नौजवान उपरोक्त प्रशिक्षण लेना चाहते हैं वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के माध्यम से, अप्रैल के अन्त के पूर्व बन्द लिफाफे में मुझे प्रार्थना पत्र भेज सकते हैं।'' (सी डब्ल्यू एम जी, खण्ड 14 पृष्ठ 301)*

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के एक वर्ष पश्चात् मदुरै में तमिलभाषियों को 26 मार्च 1919 को सीधे सम्बोधित करते हुए गांधीजी ने कहा कि– *''जो लोग शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, अगर उन्हें पता होता कि हिन्दी और केवल हिन्दी, भारत की राष्ट्रभाषा बन*

सकती है, तो आप लोगों ने बहुत पहले ही उसे सीख लिया होता। कोई बात नहीं। गलती के सुधार में कभी भी बहुत देर नहीं होती।'' इसके दो दिन पश्चात् टूटीकोरिन में पुनः तमिलभाषियों को उद्बोधित करते हुए उन्होंने कहा– *''जब आप लोग भारत की राष्ट्रभाषा सीख लेंगे, तो मुझे आपको हिन्दी में सम्बोधित करते हुए बहुत खुशी होगी। अब आप सबको मद्रास और अन्य स्थानों पर हिन्दी सीखने का खुला अवसर उपलब्ध है। जब तक आप इस मौके का फायदा नहीं उठाते, तब तक आप शेष भारत से कटे रहेंगे।'' (सी डब्ल्यू एम जी, खण्ड 14 पृष्ठ 159)*

अप्रैल 1919 में रौलेट एक्ट के विरुद्ध गांधीजी द्वारा प्रणीत सत्याग्रह चालू था। इस दौरान 18 अप्रैल, 1919 को हिन्दी लिटरेरी कॉन्फ्रेन्स को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा– *''इस समय देश में चल रहा सत्याग्रह हिन्दी भाषा के मुद्दे के लिए भी है। सत्याग्रह सत्य के लिए लड़ाई है। और अगर हममें सत्य के प्रति सम्मान की भावना है तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दी ही एकमात्र भाषा है, जिसे हम लोग राष्ट्रभाषा बना सकते हैं। कोई भी दूसरी क्षेत्रीय भाषा यह दावा नहीं कर सकती।'' (सी डब्ल्यू एम जी खण्ड 15, पृष्ठ 240)*

गांधीजी का हिन्दी प्रचारक का यह क्रियाशील रूप खिलाफत आन्दोलन तक बना रहा। खिलाफत आन्दोलन के माध्यम से गांधीजी ने मुसलमानों को राष्ट्रीय धारा में लाने का प्रयास किया था। इस प्रयास में मुस्लिम तुष्टीकरण के अन्तर्गत गांधीजी का उत्साह हिन्दी के प्रति धीरे–धीरे ठंडा पड़ने लगा। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रयास को सत्याग्रह (सत्य + आग्रह) कहने वाले गांधी जी पर राजनीति और राजनैतिक अनिवार्यताएं हावी हो गईं। उनका सत्य का आग्रह क्षीण हो गया। वह हिन्दी के साथ सदा उर्दू का भी प्रयोग करने की बात करने लगे। वह हिन्दी के स्थान पर 'हिन्दी–उर्दू' को राष्ट्रभाषा के रूप में अब प्रतिष्ठित करने की बात करने लगे। कालान्तर में जब जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम सम्प्रदायवाद सघन हुआ, तो उसके दबाव में गांधीजी का तुष्टीकरण भी सघन हुआ। अब गांधीजी राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दी–उर्दू के स्थान पर एक तीसरी भाषा 'हिन्दुस्तानी' की वकालत करने लगे। हिन्दी से हिन्दुस्तानी की यात्रा गाधी जी के सत्य–आग्रह की कहानी का दूसरा खण्ड है। यह सिक्के का दूसरा पहलू है।

हिन्दी से हिन्दुस्तानी : राजनीति का अंग

सन् 1920 में गांधी जी ने खिलाफत आन्दोलन का सूत्रपात किया। प्रथम महायुद्ध में तुर्की ने अग्रेजों के विरूद्ध जर्मनी का साथ दिया था। युद्ध में जर्मनी के साथ–साथ तुर्की की भी पराजय हुई थी। युद्ध के बाद अंग्रेजों ने तुर्की के सुल्तान की तमाम शक्तिया छीन कर उसे केवल नाममात्र का शासक बना दिया। तुर्की के सुल्तान को दुनिया के सभी देशों कें मुसलमान अपना खलीफा (धर्मराजा) मानते थे, अतएव तुर्की के सुल्लान के पक्ष में और उसके राजकीय पद–प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना कें लिए संसार भर के मुसलमानों में अंग्रेजों के विरूद्ध

रोष व्याप्त हो गया। मुसलमानों के इस रोष को मोड़ देकर हिन्दू मुसलमान एकता सुदृढ़ करने के उद्देश्य से गांधीजी ने खिलाफत आन्दोलन की योजना बनाई ।

गांधीजी का मानना था कि अगर कांग्रेस (जिसमें प्रायः 99 प्रतिशत हिन्दू थे) तुर्की के खलीफा कें समर्थन में आन्दोलन करती है, तो मुसलमान, जो अब तक कांग्रेस से प्रायः दूर ही रहे थे, कांग्रेस के साथ आयेंगे, और हिन्दु–मुस्लिम एकता स्थापित होगी। खिलाफत आन्दोलन का भारत की आजादी की लड़ाई से दूर–दूर का भी रिश्ता नहीं था। सच कहा जाए तो खिलाफत आन्दोलन को स्वाधीनता संग्राम माना ही नहीं जाना चाहिए। इसका मात्र उद्देश्य मुसलमानों की भावना की तुष्टि करके, उन्हें कांग्रेस के साथ लाना था। मुसलमानों कें तुष्टिकरण की इसी श्रृंखला में ही गांधी जी ने हिन्दी कें स्थान पर हिंन्दुस्तानी की वकालत शुरू कर दी।

20 अगस्त 1920 को नागपुर अधिवेशन में गांधी जी की सिफारिश पर कांग्रेस ने खिलाफत आन्दोलन चलाना स्वीकार किया। यह तिथि (20.08.1920) हिन्दी के इतिहास में भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह वह विभाजक तिथि है, जिसके पूर्व गांधी जी हिन्दी के समर्थक थे और इसके पश्चात वह हिन्दुस्तानी के प्रचारक बन गए।

21 मई 1920 को गांधी जी ने यंग इण्डिया में लिखा– *''हमारी बहुत सी देशी भाषाएं एक–दूसरे से मिलती जुलती हैं, इसलिए सब प्रान्तो के लिए राष्ट्रभाषा के नाते हिन्दी अनुकूल है''*। लेकिन 2 फरवरी, 1921 को 'यंग इण्डिया' में उन्होंने लिखा– *'' अंग्रेजी जानने से थोड़े लोगों कें साथ ही विचार–विनिमय के द्वार खुलते हैं। इसके विपरीत हिन्दुस्तानी से काम चलाऊ ज्ञान अपने देश के बहुत ही ज्यादा भाई–बहनों के साथ बातचीत की शक्ति प्रदान करता है।''*

गांधीजी महात्मा होने कें साथ–साथ राजनेता भी थे। अतएव राजनेता की भांति उनके विचारों में लचीलापन था, जो परिस्थितयों के अनुरुप बदलता रहता था ।

गांधीजी का तात्पर्य हिन्दुस्तानी से हिन्दी–उर्दू की मिली–जुली भाषा से था जो एक साथ देवनागरी लिपि तथा फारसी लिपि में लिखी जाए। गांधीजी की अपेक्षा थी कि हिन्दुस्तानी जानने वाला दोनों ही लिपियों में लिखना सीखे। अगर वह केवल हिन्दी जानता है, तो उर्दू पढ़ना सीखे और फारसी लिपि में लिखना सीखे। और अगर उर्दू में लिखना–पढ़ना जानता है तो वह हिन्दी और नागरी सीखे। गांधीजी हिन्दुस्तानी के प्रचार–प्रसार में जी जान से जुट गए।

गांधीजी के आदेश से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास ने 1938 से ''हिंन्दुस्तानी की पहली किताब'' के शीर्षक से एक पुस्तक छापी। इस पुस्तक के आरंभ में मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अपनी अंग्रेजी में लिखी भूमिका में लिखा *''इस किताब में जिस जबान का*

इस्तेमाल किया गया है वह असल में उस जबान का नमूना है जिसे सब सूबों की जबान बनने का हक है।'' रामचन्द्र वर्मा ने 'नागरी–प्रचारिणी पत्रिका' के वैशाख संवत 1995 वि. के अंक में इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए लिखा ''इस पुस्तक में हिन्दी भाषा के शब्द अपेक्षाकृत बहुत ही कम हैं, और अरबी–फारसी शब्दों की भरमार है। उदाहरणार्थ, पुस्तक कें सातवें पृष्ठ पर अकरम, जमजम, अगमत, आदि अरबी के ऐसे विकट शब्द आए हैं जिनका मतलब शायद मद्रास कें बड़े मुल्ला भी नहीं समझते होंगे। और इसी तरह के शब्दों से युक्त हिन्दुस्तानी भाषा के संबंध में पुस्तक के आरंभ में बच्चों से कहा गया है– *'यह हमारे देश के करोडों लोगों की जबान है, और थोड़े दिनों में देश के सारे लोग इसे समझेंगे। अरबी और फारसी के मुश्किल से मुश्किल शब्द इसमें शुद्ध रूप से रखे गए हैं, लेकिन संस्कृत के सीधे–सादे अमृत शब्द के भी हाथ पैर तोड़कर उसे अमरत बना दिया गया है। पृष्ठ 37 में आया है– रामदास ने दादी से कहा –दादी–बी, नमस्ते। यह है भाषा के नाम पर संस्कृति की हत्या। (हिन्दी और देवनागरी : श्री नारायण चतुर्वेदी; प्रकाशक; 53, खुर्शेदबाग, लखनऊ)।*

ऐसी ही हिन्दुस्तानी की कुछ कृतियों में रामायण 'बादशाह राम और बेगम सीता' की कथा बन जाती है। हिन्दी और उर्दू का ऐसा अधकचरा और बनावटी घोलमेल अधिकांश भारतीय जनता ने अस्वीकार कर दिया। उनको लगा कि हिन्दुस्तानी की आड़ में गांधीजी उर्दू को चोर दरवाजे से लाकर थोपने की कोशिश कर रहे हैं। फिर भी हिन्दुस्तानी को हिन्दी भाषियों द्वारा स्वीकार कराने के लिए गांधीजी अपने प्रयत्न में डटे रहे।

टंडनजी का दृढ़ संकल्प

गांधी जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लगातार 27 वर्षों तक अध्यक्ष बने रहे थे। अतएव वह समझते थे कि वे जो चाहेंगे, और कहेंगे, उसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन आंख बन्द करके मानेगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। हिन्दुस्तानी के मसले पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने गांधी जी के परामर्श को अस्वीकार कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्रभाषा (अखिल भारतीय संपर्क भाषा) के रूप में प्रतिस्ठित करने के उद्देश्य से कार्यरत था। गांधी जी ने चाहा कि भविष्य में सम्मेलन हिन्दी के स्थान पर हिन्दुस्तानी भाषा का प्रचार करे जो देवनागरी लिपि के साथ फारसी लिपि (जिसमें उर्दू लिखी जाती है) का भी प्रचार करे। किन्तु सम्मेलन फारसी लिपि के प्रचार के लिए सहमत नहीं हुआ। सम्मेलन के कड़े रुख से गांधी जी को बहुत निराशा हुई। उन्होंने 25 मई, 1945 को टण्डन जी को पत्र लिखा – *''सम्मेलन की दृष्टि से वही हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है, जिसमें नागरी लिपि को ही राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है। जब मैं सम्मेलन की भाषा हिन्दी और नागरी लिपि को पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूँ, तब मुझे सम्मेलन से हट जाना चाहिए। ऐसी दलील मुझे योग्य लगती है। इस हालत में सम्मेलन से हट जाना क्या मेरा फर्ज नही होता है?....''(हिन्दी राष्ट्रभाषा से राजभाषा तक; विमलेश कान्ति वर्मा, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 41–42)*

इस पत्र में गांधी जी ने टंडन जी से परामर्श चाहा था कि क्या उनको सम्मेलन से त्यागपत्र दे देना चाहिए? उन्होंने अब तक त्यागपत्र नहीं दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी जी को आशा थी कि टंडन जी उनको सम्मेलन में बने रहने को कहेंगे, और आश्वासन देंगे कि उनकी इच्छानुसार ही सम्मेलन आगे कार्य करेगा। किन्तु टण्डन जी ने एसा कुछ नहीं किया। उन्होंने बिना किसी लाग–लपेट के अपने 8 जून, 1945 के उत्तर में गांधी जी को सम्मेलन से त्यागपत्र देने के लिए लिख दिया – *''आपकी आत्मा कहती है कि सम्मेलन से अलग हो जाऊँ, तो आपके अलग होने की बात पर खेद होने पर भी नतमस्तक हो आपके निर्णय को स्वीकार करूंगा।'' (उपरोक्त पृष्ठ 43)*

टंडन जी के इस मुँहफट उत्तर के बावजूद गांधी जी के अन्तर्मन में यह आशा बनी रही कि शायद टंडन जी उन्हें सम्मेलन में बने रहने को कहें। इसलिए उन्होंने टंडन जी की सलाह के बावजूद त्यागपत्र नहीं दिया। अपने 13 जून, 1945 के पत्र में गांधी जी ने पुनः इसी विषय पर टंडन जी का मत जानना चाहा। उन्होंने लिखा – *''आपका उत्तर आने पर मैं आखिर का निर्णय लूंगा।''*

गांधी जी के इस पत्र का उत्तर टंडन जी ने अपने 11 जुलाई, 1945 के पत्र से दिया। इसमें भी उन्होंने दो टूक शब्दों में गांधी जी को बता दिया– *''मैं आपके इस विचार से कि प्रत्येक देशवासी हिन्दी और उर्दू दोनों सीखे, सहमत नहीं हो पाता।''*

टंडन जी ने आगे यह भी कहा कि हिन्दी और उर्दू का समन्वय तब सम्भव है जब हिन्दी की संस्थाओं के साथ उर्दू की संस्थाएं भी इसे स्वीकार करें। उन्होंने लिखा–''*उर्दू के लेखक न चाहें, और आप और हम समन्वय कर लें यह असंभव है।....जब तक हिन्दी और उर्दू के लेखक हिंन्दी–उर्दू के समन्वय में शरीक नहीं होते, तब तक यह यत्न सफल नहीं हो सकता।''* ऐसी घोषणा करते हुए कि, उन्होंने पत्र के अंत में, शिष्टाचारवश गांधीजी से सम्मेलन में बने रहने के लिए कहा–*''आप आज जो काम करना चाहते हैं वह सम्मेलन का नहीं है।...... आप उससे अलग जो करना चाहते हैं, इसे सम्मेलन में रहते हुए भी कर सकते हैं।'' (उपरोक्त पृष्ठ 46–47)*

टंडनजी ने दृढ़ता से गांधीजी को जता दिया था कि सम्मेलन किसी भी हालत में, चाहे वह गांधी जी का ही दबाव क्यों न हो, अपने मार्ग से डिगेगा नहीं। अन्ततः गांधी जी ने 25 जुलाई 1945 के पत्र के माध्यम से टंडनजी को सम्मेलन से अपना त्यागपत्र भेज दिया– *''मेरा ख्याल है कि सम्मेलन ने मेरी हिन्दी की व्याख्या अपनाई नहीं है। राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनों भाषाओं का ज्ञान आता है.... मेरा इस्तीफा कबूल किया जाए।'' (उपरोक्त पृष्ठ 50)*

गांधी जी राजनैतिक स्तर पर हिन्दू–मुसलमानों में समन्वय चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिन्दुस्तानी (हिन्दी उर्दू का समन्वय) मात्र एक साधन थी। उस समय राजनैतिक

क्षेत्र में जो मुस्लिम तुष्टीकरण चल रहा था, हिन्दुस्तानी को उसका भाषा के क्षेत्र में विस्तार कहा जा सकता है।

उर्दू के लिए चोर दरवाजा :

जब देश का सांप्रदायिक आधार पर 1947 में विभाजन हुआ, तो हिन्दुस्तानी भाषा का आन्दोलन ताश के पत्तों सा बिखर गया। पाकिस्तान ने उर्दू को वहां की राजभाषा घोषित कर दिया। अतएव हिन्दुस्तान में उर्दू को राजभाषा बनाना संभव नहीं था। इसलिए उर्दू के सभी हिमायत करने वालों ने हिन्दुस्तानी का पल्ला पकड़ा।

उर्दू को हिन्दुस्तानी के चोर–दरवाजे से लाने के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी की जोरदार पैरवी की। हुसैन इमाम, ऐैजाज रसूल, काजी करीमुद्दीन हैदर, मौलाना हिफजुर्रहमान, काजी सैयद करीमुद्दीन तथा मौलाना हसरत मोहानी ने विभाजन के पूर्व कभी भी हिन्दुस्तानी की बात नहीं की थी। लेकिन इन सब उर्दू के पैरोकारों ने महात्मा गांधी का नाम ले लेकर संविधान सभा में हिन्दुस्तानी की जोर–शोर से पैरवी की। इमाम हुसैन ने कहा– *''मैं सुझाव दूंगा कि देवनागरी और उर्दू लिपियों में लिखी हिन्दुस्तानी को ही हमें राष्ट्रभाषा स्वीकार करना चाहिए और यही महात्मा गांधी की इच्छा थी।''* मौलाना हिफजुर्रहमान ने भी गांधीजी की दुहाई देते हुए, हिन्दुस्तानी की वकालत की –*''मैं हैरान हूं कि हिन्दुस्तान का हरएक आदमी, आला और अदना जो यह चाहता है कि हिन्दुस्तान का नाम ऊँचा और बुलन्द हो, वह कैसे गांधीजी के एक बड़े नियम और उसूल को भूल गया है। जिस हिन्दुस्तानी जबान का गांधीजी प्रचार करते थे और उसको यूनियन की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे, उसको मुल्क आज बिल्कुल खत्म करना चाहता है, और उसकी जगह हिन्दी जबान को दे रहा है। मैं हैरान हूं कि कांग्रेसी महात्मा गांधी के उन उसूलों को आज कैसे भूल गये हैं, जबकि उनका नाम हर एक बात के साथ लेते हैं।''* इसी प्रकार काजी सैयद करीमुद्दीन ने भी गांधी जी को याद करते हुए कहा– *'' कांग्रेस ने तो यह मान लिया था कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी जबान दोनों देवनागरी और उर्दू रसमुलखत (लिपि) में होगी। अगर आज महात्मा गांधी जिन्दा होते तो वह देखते कि कांग्रेस एक ''रोक'' (चट्टान) की तरह इस मामले में खड़ी होती है ताकि दोनों रसमुलाखत (लिपियां) यहां मुकर्रर की जाएं।''*

संविधान सभा में सिर्फ मुसलमान सदस्य ही हिन्दुस्तानी की तरफदारी में खड़े हुए थे। शेष अधिकांश कांग्रेसी हिन्दी और देवनागरी के पक्ष में थे। इससे मौलाना अबुल अबुल आजाद को बहुत निराशा हुई। उन्होंने कहा– *''मेरी बरसों से यह राय रही है कि कौमी जबान को हिन्दुस्तानी के नाम से ताबीर करना चाहिए, और क्या यह याद रखना जरूरी नहीं है कि अपनी जिन्दगी के आखिरी दिन तक गांधीजी की भी यही राय थी। इस गर्ज से उन्होंने हिन्दुस्तानी प्रचार सभा कायम की और इसलिए वह हिन्दी साहित्य सम्मेलन से अलग हो गए। और जब कांस्टीट्यूशन के सिलसिले में यह सवाल कांग्रेस पार्टी के सामने आया......मुझे*

तवक्को थी कि कम अज कम कांग्रेस के पुराने साथी अपनी जगह में न हिले होंगे और गांधी जी के उसूलों पर गये होंगे। मगर......मुझे सख्त मायूसी हुई। मैनें देखा कि चन्द गिने हुए कदमों के सिवा और सारे कदम अपनी जगह से हट गए हैं।''

जो हिन्दुस्तानी को नागरी और फारसी लिपि के साथ राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे, उन उर्दू के हिमायतियों की नीयत साफ होती तो उन्होंने खुद भी देवनागरी लिपि में लिखना सीख लिया होता। संविधान सभा में हिन्दुस्तानी का झंडा ऊँचा करने वाले हुसैन इमाम, एजाज रसूल, काजी करीमुद्दीन हैदर, मौलाना हिफजुर्रहमान, काजी सैयद करीमुद्दीन आदि ने कभी नागरी लिपि सीखने की आवश्यकता नहीं समझी थी। यहां तक कि मौलाना अबुल कलाम आजाद भी नागरी से अन्त तक अनभिज्ञ रहे। इससे स्पष्ट है ये उर्दूवाले बदनियती से हिन्दुस्तानी (फारसी लिपि के साथ) को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे, जिससे उसकी आड़ में फारसी लिपि का सरकारी कामकाज में प्रयोग बना रहे और अनुकूल राजनैतिक परिस्थितियाँ आने पर वह उर्दू को देश की राजभाषा बना सकें। यह सब एक सोची–समझी चाल के अन्तर्गत किया जा रहा था।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जब कांग्रेस की वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत विभाजन प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के सम्मुख 14 जून 1947 को उनकी अन्तिम स्वीकृति के लिए पेश किया गया तो उसके अधिकांश सदस्य विभाजन के विरूद्ध थे। पुरूषोत्तम दास टंडन तथा कुछ अन्य नेताओं ने तो खुले तौर पर विभाजन के प्रस्ताव को अस्वीकृत करने की पेशकश की। लेकिन जब गांधी जी ने उनसे विभाजन स्वीकार करने की अपील की, तो दिल से विभाजन न चाहते हुए भी उन्होंने विभाजन पर अपनी स्वीकृति दे दी। कांग्रेसजनों पर ऐसा प्रभाव था गांधी जी का ! इसी प्रकार संविधान सभा के सदस्य कांग्रेसियों ने न चाहते हुए भी हिन्दी के स्थान पर हिन्दुस्तानी को (फारसी लिपि सहित) राष्ट्रभाषा बनाना स्वीकार कर लिया होता, अगर गांधी जी ने उनसे अपील की होती। यह महज इत्तफाक था कि गांधी जी की तब तक मृत्यु हो चुकी थी, अन्यथा आज हिन्दुस्तानी देश की राष्ट्रभाषा होती। तुष्टीकरण की वेदी पर हिन्दी बलिदान होते–होते बच गई।

बी–255, सेक्टर–26,
नोएडा–201301
दूरभाष : 9891510230
dpsinha50@hotmail.com